



प्राचीन भारत में बौद्ध की लोकतांत्रिक व्यवस्था

डॉ. गजेन्द्र सिंह¹

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय, बावल

भूपेश²

शोधार्थी, इतिहास विभाग
कुरुक्षेत्रा विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्रा

छठी शताब्दी ई. पू. संसार में धार्मिक परिवर्तन का युग था। स्व. डॉ. राधकृष्णन ने लिखा है कि, “यह शताब्दी विश्व में अध्यात्मिक तथा बौद्धिक विकास के लिए प्रसिद्ध है।” प्रत्येक धर्म परिस्थितियों की ही उपज होता है। हर नई धार्मिक लहर के जन्म तथा विकास के लिए राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य कई कारण जिम्मेदार होते हैं। छठी शताब्दी ई. पू. में सारे विश्व में अशान्ति के बादल मंडरा रहे थे। बहुत से बुद्धिमान व्यक्तियों ने अपने-अपने राष्ट्रों में अन्धविश्वासों, जाति प्रथा के कठोर नियमों तथा घिसे-पिटे रीति-रिवाजों के विरुद्ध जोरदार बगावत की तथा नये विचारों और सिद्धान्तों का प्रचार किया। इस समय झूठे रीति-रिवाजों, महँगे यज्ञों तथा ब्राह्मणवाद के कारण साधरण वर्ग का जीना बहुत कठोर हो चुका था। इस बुराईयों को दूर करने के लिए चीन में कन्फ्यूशियस, ईरान में जुरुथु, यूनान में परमानार्थ तथा भारत में महावीर तथा महात्मा बुद्ध (जैसे धार्मिक नेता तथा सुधरक पैदा हुए। इन सुधरकों का प्रचार लोगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। बौद्धमत तथा जैनमत अपनी शिक्षाओं के कारण शीघ्रता से लोकप्रिय बन गए। बुद्ध के काल में धार्मिक संघ² भारतीय समाज के एक सुपरिचित अंग थे तथा बुद्ध का ख्यातिप्राप्त संघ एक नवीन न होकर विद्यमान संस्थाओं का विकासमात्रा था। अतः धार्मिक जीवन में प्राचीन भारतीयों की सामूहिक गतिविधियों को भलीभाँति समझने में बौद्ध संघ का विस्तृत विवरण बहुत सहायक होगा, क्योंकि वह निस्सन्देह प्राचीन भारत के धार्मिक संघों का सबसे अधिक उन्नत रूप था³।

संघ की कार्य पद्धति:-

संघ का संगठन एवं शासन प्रणाली जनतंत्रवादी⁴ के अनुसार था। सभी भिक्षु और भिक्षुणियों को समान अधिकार प्राप्त थे। संघ को सभी सदस्य भिक्षु-भिक्षुणियों को अनुशासन में रखने की सत्ता थी और अनुशासन भंग करने वाली दोषी भिक्षु-भिक्षुणियों को दण्ड देने का अधिकार भी संघ को था। आरम्भ में भगवान् बुद्ध का वचन ही कानून था तथा उनकी उच्चतम शक्ति संघ का प्रमुख निर्देशक तत्व थी। किन्तु प्रमुखतः दो कारणों से यह व्यवस्था

¹मिगलानी, के.एल., भारतीय इतिहास का प्राचीन तथा सल्तनतकाल, दिल्ली, पृ. 89 ।

²शर्मा एल.पी., प्राचीन भारत, आगरा, 2001, पृ. 107 ।

³मजूमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 275 ।

⁴महावग्ग, ;1.31, 40, 43, 42, 41, 44-45, 46, 47, 50, 61, 71द्ध ।

स्थायी नहीं हो सकती थी। पहली बात यह थी कि संघ का प्रसार देश के इतने विशाल भूभाग में हो गया था कि उसका एक मनुष्य के वैयक्तिक प्रशासन के अधीन रहना सम्भव नहीं रह गया था और दूसरी बात यह कि बु(की मृत्यु के पश्चात् भी संघ के निर्वाह की व्यवस्था करनी थी। अतः एक विशिष्ट संगठन शनैः-शनैः विकसित हुआ। यद्यपि उसके परिपक्व होने में दीर्घ काल लगा तथापि उसके विकास का प्रथम एवं महत्वपूर्ण उपक्रम बु(के जीवनकाल में दृष्टिगत होता है।

गौतम बु(एकमात्रा नियमप्रवर्तकः—

किन्तु एक अर्थ में पुरातन व्यवस्था बनी रही। बु(अपनी मृत्यु के पश्चात् भी एकमात्रा नियमप्रवर्तक⁵ बने रहे। वस्तुतः बौ(संघ का यह एक मूलभूत सि(न्त था कि धर्मप्रवर्तक के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति संघ के लिए नियमों का निर्माण नहीं कर सकता था। अन्य लोग उसका स्पष्टीकरण और व्याख्या कर सकते थे, किन्तु उन्हें नवीन नियमों की रचना का अधिकार प्राप्त नहीं था।

स्थानीय संघ—केन्द्रीय संगठन का अभावः—

आरम्भ में बौ(संघ के दो भाग थे — भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के अनेक स्थानीय संघ और भगवान् बु(जो एक केन्द्रीय शक्ति के रूप में उनका नियमन करते थे। विभिन्न स्थानीय संघों के प्रतिनिधिभूत केन्द्रीय संगठन का पूर्णतः अभाव था।

स्थानीय संघों का अतिलोकतान्त्रिक संगठन⁶ः—

स्थानीय संघों का प्रशासन वस्तुतः लोकतान्त्रिक सि(न्तों पर आधारित था। भिक्षुओं की साधरण सभा सर्वोच्च सत्तासम्पन्न संस्था थी तथा उसकी बैठकों की कार्यप्रणाली का विधान सूक्ष्म यथार्थता के साथ किया गया है।

साधरण सभा और उसका संगठनः—

पहली बात यह है कि किसी संघ के सभी पूर्णतः दीक्षित भिक्षु सभा के सदस्य थे। उनमें से प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो किसी अपराध के लिए दिए गए दण्ड के कारण अयोग्य कार न दिया गया हो मतदान का अधिकार प्राप्त था। कोई भी बैठक तब तक वैध नहीं मानी जा सकती थी जब तक कि उसमें मतदान के अधिकारी सभी सदस्य उपस्थित न होते अथवा अनुपस्थित होने पर औपचारिक रूप में अपनी सहमति व्यक्त न कर देते⁷।

संघ की बैठकः—

संघ की सभायें लोकतंत्रा के नियमों के अनुसार होती थी। जितने भी भिक्षु एक गांव या नगर में निवास करते थे, उनकी बैठक प्रत्येक 15 दिन के बाद होती थी। उस सभा में भिक्षु अपना एक सभापति चुनते थे तथा इसी तरह से एक व्यक्ति धर्म की व्याख्या करने वाला तथा दूसरा अनुशासन सम्बन्धी नियमों की व्याख्या करने के लिए नियुक्त किया जाता था।

⁵प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 276—277 ।

⁶शर्मा के.जी., जैन एच.सी., भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, 2013, जयपुर, पृ. 119 ।

⁷प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 277 ।

बैठकों में सदस्यों को ज्येष्ठता के आधार पर स्थान दिया जाता था⁸। प्रत्येक सदस्य का नियमानुसार समय से पहले बैठक की सूचना दी जाती थी। बैठक की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए कम से कम सदस्यों की संख्या निश्चित की गई थी। अगर इससे कम सदस्य उपस्थित होते थे तो कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता था। साधारणतयः यह संख्या दस थी। परन्तु महात्मा बु(ने सीमावर्ती इलाकों में जहां पर संघ के भिक्षुओं की संख्या कम होती था, गणपूर्ति दस के स्थान पर पाँच ;सभापति समेतद्ध निश्चित कर दी थी। यह बड़े गौरव की बात है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतवासियों को आधुनिक गणपूर्ति का ज्ञान था।

कार्य के नियम:-

संघ की कार्यवाही पूर्ण अनुशासन से चलाई जाती थी। बैठक का सभापति जिसे संघ का मुखिया या विनयधरी⁹ कहा जाता था स्वयं मंच पर बैठता था तथा अन्य सदस्य उसके सामने नीचे बैठते थे। सभा के विध्वत् एकत्रित हो चुकने पर प्रस्तावक उपस्थित भिक्षुओं को प्रथम उस प्रस्ताव की सूचना देता था जिसे वह प्रस्तुत करने वाला होता था। यह सूचना '×ात्ति¹⁰' कहलाती थी। ×ात्ति के पश्चात् उपस्थित भिक्षुओं से पूछा जाता था कि वे प्रस्ताव से सहमत हैं या नहीं। यह प्रश्न 'कम्मवाचा¹¹' कहलाता था। प्रश्न एक बार अथवा तीन बार किया जाता था। प्रथम प्रकार ×ात्तिदुतिय कम्म कहलाता था और द्वितीय प्रकार ×ात्तिचतुत्थकम्म¹²। प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियों के अन्तर्गत आने वाले कार्यों के सम्बन्ध में सूक्ष्म नियमों का विधान किया गया है।

संघ के सामने प्रस्ताव के औपचारिक रूप से एक या तीन बार प्रस्तुत कर दिए जाने पर यदि उपस्थित सदस्य मौन रहते तो वह स्वतः पारित मान लिया जाता था। यदि कोई व्यक्ति प्रस्ताव के विरु(बोलता और सभा में मतभेद होता तो बहुमत का निर्णय माना जाता था। मत नियमित रूप से लिए जाते थे तथा इस प्रयोजन के लिए 'सलाकागाहापक¹³' संघ द्वारा औपचारिक रूप से नियुक्त किया जाता था।

मतभेद सुलझाने का ढंग:-

साधारणतयः निर्णय सर्वसम्मति से किये जाते थे परन्तु कुछ मतभेदों का उत्पन्न होना लोकतन्त्रीय प्रणाली में स्वाभाविक है। इन मतभेदों का शांतिपूर्वक सुलझाने का प्रयत्न किया जाता था। छोटे मोटे मतभेदों को सभापति अथवा किसी दूसरे वृ(व्यक्ति द्वारा सुलझा दिया जाता था। परन्तु यदि ऐसी अवस्था आ जाये जबकि संघ के सदस्य एक दूसरे से सहमत बिल्कुल न हों तो उस समय उस विषय को बड़े संघ में लाया जाता था, जहाँ पर उसका पफैसला प्रायः हो जाता था या पिफर संघ के कुछ सदस्यों की कमेटी ;उष्वाहिकाद्ध बना दी जाती था, जोकि खूब सोच विचार करके अपना निर्णय देती थी¹⁴। बौ(ों की दूसरी महासभा में मतभेद हो गया था। उस मतभेद को सुलझाने के लिए 8 सदस्यों की एक समिति बनाई

⁸सै.बु.ई. 13, पृ. 178, टिप्पणी-1 ।

⁹गुप्त आर.के., प्राचीन भारत में समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, 2007, जयपुर, पृ. 194 ।

¹⁰महावग्ग 1, 38, 11 ।

¹¹महावग्ग 1, 38, 5-7 ।

¹²मज्जिमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 281 ।

¹³जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, 1999, पटना, पृ. 820 ।

¹⁴गुप्त आर.के., प्राचीन भारत में समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, 2007, जयपुर, पृ. 194 ।

गई थी। यदि इन कमेटियों द्वारा भी मतभेद निर्णय न हो सके तो संघ की जनरल सभा को बुलाकर वोटों द्वारा बहुसंख्या¹⁵ का मत प्राप्त किया जा सकता था।

मतदान का ढंग:-

प्रत्येक सदस्य स्वतन्त्रातापूर्वक मत दे सकता था। नूतनाभ्यास भिक्षु मत देने के अधिकार से वंचित थे। मतदान दो प्रकार के होते थे – ,1द्ध गुप्त और ,2द्ध प्रत्यक्ष। मत शलाकाओं द्वारा दिये जाते थे। ये शलाकाएँ भिन्न-भिन्न रंग की होती थी और मतदान के हेतु ये सदस्यों में वितरित और संग्रहीत की जाती थीं। वोट कर्मचारी को 'सलाका ग्राहापक'¹⁶ कहा जाता था।

संघ जीवन:-

भिक्षु-भिक्षुणियों का जीवन संघ के नियमों एवं बु(के दस आदेशों द्वारा नियन्त्रित होता था। उन्हें व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने, पफूल-मालाएँ, सुवासित गन्धें का प्रयोग करने, मादक द्रव्यों का सेवन करने, मांसाहार करने एवं नृत्य या संगीत में भाग लेने का निषेध था। भिक्षुगण पीले रंग में रंगे हुए तीन¹⁷ वस्त्रा धरण करते थे – अन्तवसिक, उत्तर संग और संघाटित। भिक्षुगण भिक्षावृत्ति द्वारा अपना दैनिक भोजन प्राप्त करते थे और रात्रि में अध्ययन, धर्मिक विचार-विनिमय और चिन्तन-मनन करते थे। कुछ पवित्र दिवसों के सारे भिक्षुगण एकत्रित होकर धर्म-चर्चा करते थे। इसे "उपोसथ"¹⁸ कहते थे। इसमें सम्मिलित होने के पहले प्रत्येक भिक्षु को अपने पूर्वकृत अपराधों को स्वतः स्वीकार करना पड़ता था। "उपोसथ" के समय भिक्षुगण उन विधिनिषेधों का भी पाठ करते हैं जो उनके लिए बनाये गये थे। संघ के नियमों के विरु(कार्य या आचरण करने वाले भिक्षु को दण्डित करने के लिए विस्तृत विधन था। संघ अपराध भिक्षु का सामाजिक बहिष्कार या संघ बहिष्कार भी कर सकता था।

बौ(संघ का संगठन:-

1. **सदस्यता:-** प्रारम्भ में कोई भी व्यक्ति प्रवज्या ग्रहण कर भिक्षु या भिक्षुणी बन सकता था और संघ में प्रविष्ट हो सकता था। धीरे-धीरे इस निस्सीम और अन्मुक्त अधिकार का दुरुपयोग हुआ और इससे संघ में अपरिपक्व अवस्था के तरुण, अज्ञानी और अनुशासनहीन व्यक्ति, जनता के दान से विलासमय जीवन व्यतीत करने के इच्छुक व्यक्ति, राजा के अत्याचारों और दण्ड से बचने के लिए डाकू, हत्यारे, टृणी आदि भिक्षु बनकर संघ में प्रविष्ट हो जाते थे। उस समय ऐसी राजाज्ञा भी थी कि कोई भी व्यक्ति या अधिकारी बौ(भिक्षु या भिक्षुणियों को हानि नहीं पहुँचायेगा। इससे उनके अवांछनीय व्यक्ति धर्म की भावना का ढांग रच कर संघ में प्रविष्ट हो गये। कालान्तर में जब इसके दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हुए तब संघ में प्रवेश के लिए अधेलिखित नियम बना दिये गये। संघ का सदस्य होने के लिए कुछ योग्यताएँ निर्दिष्ट कर दी गयीं। किन्तु इस सामान्य सि(न्त के कुछ अपवाद थे तथा

¹⁵महावग्ग, 1, 31, 1, 1, 53, 4, 15, 3, 5 ।

¹⁶महावग्ग, 1, 25, 6 ।

¹⁷महावग्ग 1, 25 ।

¹⁸महावग्ग, 1, 27, 6-8 ।

निम्नलिखित वर्गों¹⁹ के व्यक्ति संघ की सदस्यता से वंचित थे। ;1द्ध कुष्ठ, गण्ट, सूखा कोढ़, शोष तथा अपरस्मार – इन पाँच रोगों से ग्रस्त। ;2द्ध राजकीय सेवा में नियुक्त। ;3द्ध उद्घोषित चोर अथवा कारागृह को भेदकर भागने वाला चोर, अथवा अपने कुकृत्यों के चिह्न धरण करने वाला चोर। ;4द्ध कशाघात अथवा चिह्न के अंग द्वारा दण्डित। ;5द्ध टृणी। ;6द्ध दास। ;7द्ध पन्द्रह वर्ष से कम आयु का बालक। ;8द्ध क्लीब। ;9द्ध विकृत शरीरवाला अथवा जिसका कोई अंग कटा हुआ हो।

स्त्रियाँ भी बौ(संघ में प्रविष्ट होकर उसकी सदस्या बन सकती थीं, पर उनके लिए अधेलिखित आठ²⁰ शर्तें थीं:

1. स्त्री भिक्षुणियों को अपने कर्तव्य भलीभाँति समझने चाहिए।
 2. प्रत्येक पक्ष या अर्(माह में उन्हें एक बार गृहस्थ के यहाँ से भिक्षा लानी चाहिए।
 3. वर्षा काल में उन स्थानों में जहाँ भिक्षु नहीं हो, निवास नहीं करना चाहिए।
 4. उन्हें भिक्षुओं से इस प्रकार अलग रहना चाहिए जिससे कि भिक्षुगण न तो उन्हें और न उनके कार्यों को देख सकें और न उनकी बातों को सुन सकें।
 5. वे भिक्षुओं से हिलमिल कर उन्हें विपथ न करें।
 6. वे क्रोध, आवेश, अपशब्दता आदि पाप कर्मों से वंचित रहें।
 7. प्रत्येक पखवाड़े में वे किसी भिक्षु के सम्मुख बैठकर अपने पाप या बुरे कर्मों को स्वीकार करें।
 8. प्रत्येक भिक्षुणी को चाहे वह कितनी ही वयोवृ(ही क्यों न हो, प्रत्येक भिक्षु को चाहे वह नवीन भिक्षु ही क्यों न हो, आदर, सम्मान और श्र(ा से देखना चाहिए। भिक्षु के आगमन पर उन्हें खड़े होकर उसका अभिनन्दन करना चाहिए। बौ(संघ के इन आठ नियमों को बौ(भिक्षुणियाँ ने निबाहा और खमा, किसा गौतमी, विशाखा आदि अनेक विद्वान भिक्षुणियाँ प्रसि(हो गयीं।
2. दीक्षा:— उपरोक्त श्रेणियों में से किसी के अन्तर्गत न आनेवाला व्यक्ति पब्वज्जा और उपसम्पदा नामक दीक्षाओं के द्वारा बौ(संघ में दीक्षित किया जा सकता था। जब कभी कोई स्त्री पुरुष संघ में प्रवेश पाने का इच्छुक होता था, तब उसे केश मुण्डन कर, पीले वस्त्रा धरण कर, स्थानीय संघ के सभापति या प्रधान के सम्मुख बौ(धर्म व संघ के प्रति अधेलिखित शपथ²¹ ग्रहण करनी पड़ती थी।

बु(शरणं गच्छामि ।
धम्मं शरणं गच्छामि ।
संघ शरणं गच्छामि ।

¹⁹महावग्ग, 1, 27 ।

²⁰प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 279 ।

²¹प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 279 ।

कद्ध उपसम्पदा दीक्षा:— उपसम्पदा एक विशिष्ट क्रिया विधि होती थी जिसे सम्पादित करने का अधिकार भिक्षुओं का था। संघ में प्रवेश और दीक्षा की यह विधि सरल और सादी होती थी²²। आगे चलकर उपसम्पदा दीक्षा का स्थान एक अन्य प्रकार ने ले लिया। इस प(ति में उपज्जाय²³ का, जो स(विहारिक अथवा नवागन्तुक व्यक्ति को दीक्षा देता था, सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान था। वह एक ऐसा विद्वान् एवं समर्थ भिक्षु होना चाहिए जिसने उपसम्पदा के पश्चात् दस वर्ष व्यतीत कर लिए हों। दो प्रकार के व्यक्तियों को संघ की सदस्यता में औपचारिक रूप से दीक्षित होने के पूर्व अनुशासन की एक मध्यवर्ती अवस्था से होकर गुजरना पड़ता था। ये व्यक्ति इस प्रकार थे: ;1द्ध जो पहले किसी बौ(तर सम्प्रदाय ;तिथियद्ध के सदस्य रहे हों, और ;2द्ध जिनकी आयु 15 और 20²⁴ वर्ष के बीच हो।

इनमें प्रथम को त्रारत्न में शरण की उद्घोषणा करने पर संघ के एक औपचारिक कृत्य²⁵ द्वारा निश्चित चार मास के परीक्षाकाल ;परिवासद्ध से होकर गुजरना पड़ता था। इस काल में यदि वह अपने चरित्रा और व्यवहार²⁶ से भिक्षुओं को सन्तुष्ट नहीं कर पाता तो उसे उपसम्पदा नहीं दी जाती थी।

खद्ध पब्बज्जा²⁷:— 15 और 20 वर्ष के बीच की आयु का व्यक्ति त्रारत्नों में शरण लेने की घोषणा कर केवल पब्बज्जा नामक दीक्षा प्राप्त कर सकता था, तथा उपसम्पदा के लिए उसे अपनी आयु के बीसवें वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इस मध्यवर्ती काल में वह सामणे²⁸ कहलाता था। उसे एक उपज्जाय की अधीनता में कठोर अनुशासन का जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

3. **दशशील:**— ये दस नियम बौ(के एक प्रकार के 'उपदेश दशक²⁹' के समान थे—
1. मैं जीवधरियों को हानि पहुँचाने से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 2. मैं जो दिया नहीं गया है उसे ग्रहण करने से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 3. मैं आवेश में दुर्व्यवहार करने से घृणा का नियम स्वीकार करता हूँ।
 4. मैं मिथ्या भाषण से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 5. मैं 'सुरा', और 'मज्जा', जिनसे प्रमादोत्पत्ति होती है, से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 6. मैं निषि(कालों में भोजन करने से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 7. मैं नृत्य, गायन, संगीत, अभिनय से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 8. मैं हार, गन्ध लेप एवं रत्नाभरणों से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।
 9. मैं उफँची एवं विस्तृत शैया से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।

²²श्रीवास्तव के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, 2001-02, इलाहाबाद, पृ. 854 ।

²³मज्जमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 281 ।

²⁴महावग्ग, 9, 3 ।

²⁵मज्जमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 295 ।

²⁶मिगलानी, के.एल., भारतीय इतिहास का प्राचीन तथा सल्तनतकाल, दिल्ली, पृ. 98 ।

²⁷मिगलानी, के.एल., भारतीय इतिहास का प्राचीन तथा सल्तनतकाल, दिल्ली, पृ. 98 ।

²⁸मज्जमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 267 ।

²⁹महावग्ग, 2, 23-25 ।

10. मैं स्वर्ण एवं रजत ग्रहण से घृणा करने का नियम स्वीकार करता हूँ।

अनुशासन काल – उपज्जाय के साथ दस वर्ष का निवास :-

किसी व्यक्ति को इन नवीन विचारों और व्यवहार से अभ्यस्त करने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता थी। अतः यह व्यवस्था की गई थी कि प्रत्येक नए भिक्षु को प्रथम दस वर्ष तक पूर्णतः अपने उपज्जाय अथवा आचरिय पर आश्रित रहना चाहिए³⁰ तथा उपज्जाय को चाहिए कि वह साँविहारिक को अपने पुत्रा के समान समझे, साँविहारिक को उचित है कि वह अपने उपज्जाय को पिता के समान समझे। इस प्रकार ये दोनों जीवन में परस्पर गौरव, विश्वास और सहयोग के साथ विचरण करते हुए धर्म और विनय में वृत्ति, उन्नति तथा वैपुल्य को प्राप्त होंगे³¹।

साँविहारिक से उपज्जाय के व्यक्तिगत सेवक के रूप में कार्य करने की आशा की जाती थी। “प्रातःकाल वह उसको दन्त-काष्ठ, मुखोदक तथा प्रातः भोजन देगा। भिक्षा के लिए जाते समय वह उसका अनुसरण करेगा, उसे पीने के लिए पानी देगा, उसके स्नान की तैयारी करेगा, उसके कपड़े सुखाएगा, उसका निवासस्थान स्वच्छ करेगा, इत्यादि, इत्यादि। “यदि संघ उपज्जाय के विरु(तज्जनिय कम्म ;अथवा चुल्लवग्ग के प्रथम खन्धक ;अध्यायद्ध में वर्णित अन्य अनुशासनात्मक कार्यवाहीद्ध करना चाहे, तो साँविहारिक को प्रयत्न करना चाहिए कि संघ उपज्जाय के विरु(कार्यवाही न करे अथवा कार्यवाही की कठोरता को कम कर दे। अथवा यदि संघ ने उसके विरु(अनुशासनात्मक कार्यवाही कर दी है, तो साँविहारिक को प्रयत्न करना चाहिए कि उपज्जाय सम्यक् व्यवहार करे, नम्रतापूर्वक रहे और अपने प्रायश्चित्त से मुक्त होने की इच्छा करे तथा संघ अपने दण्ड को वापस लेले³²।

उपज्जाय के कर्तव्य:-

इसी प्रकार साँविहारिक के प्रति उपज्जाय के भी कुछ कर्तव्य थे। उससे साँविहारिक के आध्यात्मिक एवं शारीरिक योगक्षेम का ध्यान रखने की अपेक्षा की जाती थी। इस प्रकार विनयपिटक में कहा गया है – “भिक्षुओ, उपज्जाय को चाहिए कि वह उपदेश, परिपच्छा, शिक्षा तथा अनुशासन के माध्यम से साँविहारिक को ;आध्यात्मिकद्ध सहयोग दे एवं उन्नति का मार्ग दिखाए। अनुचित व्यवहार³³ के लिए उपज्जाय साँविहारिक को संघ से बाहर निकाल सकता था। किन्तु यदि साँविहारिक क्षमा माँगता तो उसे क्षमा कर दिया जाता था³⁴। उपज्जाय के दूर चले जाने, संसार को लौट जाने, मर जाने अथवा किसी विरोधी दल में सम्मिलित हो जाने पर साँविहारिकों को आचरिय का चुनाव करना पड़ता था। उनके साथ उसका वही सम्बन्ध होता था जो उपज्जाय का।

बौ(संघ की विशिष्ट संस्थाएँ और धर्मिक कार्य:-

1. नियमित सामयिक सभाएँ:- प्रथम यह नियम बनाया³⁵ गया था कि भिक्षुओं को प्रत्येक पक्ष के आठवें, चौदहवें और पन्द्रहवें दिन एकत्रित होकर धम्म का पाठ करना चाहिए। अन्तिम दो दिनों में से एक दिन उपोसथ कर्म होता था जिसमें

³⁰सै.बु.ई., जिल्द-13, पृ. 169, पाद टिप्पणी-2 ।

³¹चुल्लवग्ग, 4, 9 ।

³²चुल्लवग्ग, 12, 2-8 ।

³³चौधरी, राधकृष्ण, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, 1989, पटना, पृ. 107 ।

³⁴जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, 1999, पटना, पृ. 823 ।

³⁵प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 277-278 ।

पातिमोक्ख का पाठ किया जाता था³⁶। यह अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाता था तथा इस कृत्य के समुचित रूप में संचालन के लिए विस्तृत नियमों का विधान किया गया था। किसी स्थान का सम्पूर्ण संघ एकत्रित होकर उपोसथ करता था। इस प्रयोजन के लिए स्थानीय प्रदेश की सीमाएँ संघ के एक औपचारिक कृत्य के द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित की गई थीं³⁷।

2. **वर्षावासः**—वस्स अथवा वर्षा द्रुतु में भ्रमण त्याग कर एक निश्चित स्थान पर रहने की प्रथा एक अन्य संस्था थी जो बौ(भिक्खुओं के मध्य सामूहिक भावना के विकास में सहायक हुई होगी। यह नियम था कि प्रति वर्ष आषाढ अथवा श्रावण पूर्णिमा के अग्रले दिन से आरम्भ कर वर्षाद्रुतु के तीन मासों में भिक्खुओं को एक निश्चित स्थान पर रहना पड़ता था³⁸।
3. **पवारणाः**—वस्सावास के अन्त में एकत्रित भिक्खु पवारणा कर्म करते थे, जिसमें उपस्थित प्रत्येक भिक्खु संघ को अपने विरु(ऐसे किसी अपराध का आरोप लगाने के लिए आमन्त्रित करता था जिसके लिए वह उसे उत्तरदायी समझता हो – ऐसा अपराध जिसे उन्होंने देखा—सुना अथवा जिस पर सन्देह किया हो – जिससे वह उसका प्रायश्चित्त कर सकता³⁹।
4. **कठिन कर्मः**—पवारणा के तत्काल पश्चात् स्थानीय संघ के पास विद्यमान चीवर उसके सदस्यों में बाँट दिए जाते थे। यह 'कठिन कर्म' कहलाता था। 'कठिन' ;अक्षरार्थ 'कठोर'द्ध का आशय उपासक—उपासिकाओं द्वारा प्रदत्त कपास की राशि से था जिससे आगामी वर्ष में संघ के उपयोग के लिए चीवर बनाए जाते थे। संघ के एक औपचारिक कृत्य द्वारा एक भिक्खु को इन वस्त्रों को रंगने और सीने का काम सौंपा जाता था। जब नवीन वस्त्रा पहिनने के लिए तैयार हो जाते थे तो वह एक वस्त्रा अपने लिए चुन लेता था और शेष वस्त्रा वहाँ उपस्थित भिक्खुओं को यह निर्देश करते हुए दिखलाता था कि उसकी दृष्टि में कौन—सा वस्त्रा संघ के प्रौढ़ सदस्यों के लिए उपयुक्त है और कौन—सा युवा भिक्खुओं के लिए। अन्त में वह संघ से अपने कार्य का औपचारिक रूप से अनुमोदन करने की प्रार्थना करता था। इस प्रकार की अनुमति प्राप्त होने पर भिक्खु अपने—अपने चीवर ले लेते थे और कठिन कर्म समाप्त हो जाता था⁴⁰।

बौ(संघ के पदाधिकारीः—

संघ की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघ के अधेलिखित पदाधिकारी⁴¹ होते थे:

³⁶मिलाओ, कर्न, मैन्डुअल, पृ. 83 ।

³⁷मज्जमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 299—300 ।

³⁸शर्मा एल.पी., प्राचीन भारत, आगरा, 2001, पृ. 107 ।

³⁹महावग्ग, 2, 3, 2, 3, 2, 4, 2 ।

⁴⁰महावग्ग, 2, 12, 7 ।

⁴¹मज्जमदार, आर.सी., प्राचीन भारत में संघटित जीवन, 1966, सागर, पृ. 309 ।

- 1- नव कम्मिक ;विहार, भवन, कक्ष, दीवार, कूप आदि के निर्माण का अधिकारीद्ध,
- 2- भण्डागारिक ;खाद्य सामग्री संग्रह करने का अधिकारीद्ध,
- 3- कप्पियकारक ;संघ व विहार की विभिन्न सामग्री क्रय करने का अधिकारद्ध,
- 4- चीवर पतिग्गाहपक ;वस्त्रागार का अधिकारीद्ध,
- 5- आरामिक पुसक ;विश्राम और आराम की व्यवस्था करने वाला अधिकारीद्ध ।
- 6- पफलभाजक ;पफल, भात का मांड, इत्यादि भोजन के पदार्थों के वितरकद्ध ।
- 7- सेनासनप××ापक ।
- 8- चीवरपटिग्गाहापक आदि ।
- 9- चीवरभाजक⁴² आदि ।

यह अधिकारी भिक्षुओं में से चुने जाते थे, और उनमें से सर्वाधिक प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही ये महत्वपूर्ण दायित्व सौंपे जाते थे ।

संघ का अपने सदस्यों पर अधिकार:-

स्थानीय संघ को अपने सदस्यों के उफपर व्यापक अधिकार⁴³ प्राप्त थे और वह उनको उनके अपराधों के लिए ;1द्ध तज्जनिय कम्म ;भर्त्सनाद्ध ;2द्ध निस्सय कम्म ;संरक्षण में रखनाद्ध, ;3द्ध पब्बजनिय कम्म ;निर्वासनद्ध, ;4द्ध पतिसरनिय कम्म ;उपासक-उपासिकाओं की क्षतिपूर्ति करनाद्ध तथा ;5द्ध उक्खेपनिय कम्म ;अस्थायी बहिष्कारद्ध इत्यादि विविध दण्ड दे सकता था । इसके अतिरिक्त परीक्षाकाल ;परिवासद्ध ओर प्रायश्चित ;मानत्तद्ध की रीति भी प्रचलित थी । इन सब के उफपर था संघ का बहिष्कार । यह बौ(धर्मग्रन्थों में वर्णित उच्चतम दण्ड है ।

निष्कर्ष:-

बौ(संघों ने धर्म प्रचार का कार्य बड़े जोर-शोर से किया तथा उनके प्रयत्नों से बौ(धर्म एक छोटे से धर्म से विश्व का धर्म बन गया । लेकिन शनैः शनैः संघ का अनुशासन ढीला पड़ने लगा और भिक्षु तथा भिक्षुणियों का चरित्र भी गिरने लगा । प्रारम्भ में ये सभी महात्मा बु(द्वारा बनाये गए दस आदेशों का पालन करते थे लेकिन कुछ समय बाद ये सभी नियम उनको कठोर लगने लगे । कुछ भिक्षु इन आदेशों को बदल कर अपने जीवन में सुगमता लागाना चाहते थे । लेकिन वैशाली की दूसरी महासभा में उनके प्रयत्न असफल रहे और उनको निराशा का मुँह देखना पड़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि बौ(धर्म में दो शाखाएँ – महायान तथा हीनयान बन गई । हीनयान शाखा के अनुयायियों ने महात्मा बु(की शिक्षाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार नहीं किया जबकि महायान शाखा वालों ने समयानुसार मूल शिक्षाओं में अनेक परिवर्तन कर दिये । उदाहरणतयः हिन्दू धर्म के कई सि(न्तों जैसे मूर्ति पूजा, संस्कृत भाषा का प्रयोग, बु(को देवता मानना आदि को अपना लिया । इस प्रकार बौ(संघ में पफूट पड़ जाने से बौ(धर्म का ह्रास होना शुरु हो गया ।

⁴²शर्मा एल.पी., प्राचीन भारत, आगरा, 2001, पृ. 94 ।

⁴³सै.बु.ई., जिल्द-17, पृ. 148-152, पाद टिप्पणी ।

भिक्षु का दैनिक जीवन प्रधन रूप से अध्ययन अथवा धर्मिक कृत्यों में व्यतीत होता था, किन्तु उससे यह आशा की जाती थी कि वह मठ के कार्य में भाग ले, अपने कक्ष को स्वच्छ करे, प्रांगण तथा मठ के भवनों को झाड़े। व्यस्क भिक्षु अपना अधिकांश समय नवाभ्यासियों को शिक्षा देने में लगाते थे। भिक्षु को आध्यात्मिक क्रियाओं में ;ब्रह्म विहारद्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे, जिनमें समौन पद्मासन मुद्रा में बैठकर वह बौ(धर्म केचार प्रधन सदाचार – प्रेम, दया, हर्ष, निर्मलता को अपने मन में लाने का प्रयत्न किया करता और समस्त जीवधरियों को इन्हीं गुणों के प्रकाश में देखने का प्रयत्न करता था जिसके अंतर्गत समस्त घृणा, सांसारिक भय और अस्थि-मांस तन माने जाते थे। जो लोग धर्मिकता में अधिक अग्रस्थ थे उनके लिए कठिन प्रकार के तप थे जो भिक्षु को निर्वाण-प्राप्ति के अधिक समीप ला देते थे।